BA(Hons.) PART –I , Paper- II

डॉ0 गौतम कुमार

अतिथि शिक्षक

राजनीति विज्ञान विभाग

आचार्य नरेन्द्र देव महाविद्यालय, शाहपुर पटोरी, समस्तीपुर

स्वामी दयानन्द सरस्वती का सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक विचार

स्वामी दयानन्द सरस्वती आर्य समाज के संस्थापक, भारतीय संस्कृति के वैदिक संरक्षक थे। उन्होंने "वेदों की ओर लौटो" (Back to Vedas) का संदेश दिया था। उन्होंने हमलोगों के आत्म सम्मान और प्रबल मानसिक जागरण के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने भारत की गौरवपूर्ण अतीत को आलोकित किया क्योंकि उन्होंने भली–भॉति मालूम कर लिया कि अंग्रेज भारतीय जनता की संस्कृति को खोखला कर अपने पैर जमाए हुए है। अतः उन्होनें भारतीय संस्कृति की महानता प्रकट की। स्वामी दयानन्द की महानता इस बात में है कि उन्होंने ऐसे युग में राष्ट्रवाद के प्राण फूँके, जब देश विदेशी सम्राज्यवाद के सिकजें में कसा हुआ था और भारतीयों के प्रति उसका रूख कठोर एवं अनुदार हो गया था। 1857 ई0 की क्रांति की प्रक्रिया ब्रिटिश शासन पर छायी थी।

स्वामी दयानन्द का सामाजिक चिन्तन – स्वामी दयानन्द सरस्वती में यह प्रबल अनुभूति थी कि देश की जनता में नरेश तथा बुद्वि वर्गो में सामाजिक, राजनीति लाकर ही अंग्रेजों को बाहर निकाला जा सकता है। इनका मानना था कि जब तक समाज में अंधविश्वासों एवं कुरीतियों का प्रचलन रहेगा तब तक भारत में राष्ट्रीय जागृति और राष्ट्र कल्याण संभव नहीं है।

1. **व्यक्ति और समाज एक–दूसरे के पूरक** – स्वामी दयानन्द का मानना था कि व्यक्ति और समाज एक–दूसरे के पूरक हैं। व्यक्ति का सर्वांगीण विकास समाज में रहकर ही

पूरा हो सकता है। समाज के भेदभाव और ऊँच–नीच को समाज के लिए खतरा मानते थे। स्वामी जी समाज के प्रत्येक व्यक्ति के विकास को आवश्यक मानते थे।

2. **वर्ण, आश्रम, धर्म का सर्मथन** – स्वामी दयानन्द ने वेदों के सहारे हिन्दु के वर्ण, आश्रम, धर्म का समर्थन किया लेकिन वर्ण, आश्रम, धर्म ने जिस जाति–प्रथा, छूआ–छूत की बुराई की, इसका उन्होंने आलोचना किया। उन्होनें कहा कि जाति व्यवस्था का तत्कालिक रूप उस वर्ण व्यवस्था का विपरीत रूप था, जिसपर वैदिक समाज स्थापित था।
3. **वेद ज्ञान का भण्डार** – स्वामी दयानन्द ने वेद से प्रमाण देकर सिद्व किया कि परमेश्वर के शुद्व रूप का ज्ञान वेदों में ही मिलता है और वेद के अध्ययन का अधिकार सभी मनुष्यों में है। उन्होनें यह व्यक्त किया कि शिक्षा के आभाव में भारतवासी किसी भी प्रकार के प्रगति नहीं कर सकते हैं।
4. **सामाजिक कुरीतियों का विरोध** – स्वामी दयानन्द ने हिन्दू समाज में व्याप्त विभिन्न प्रकार की कुरीतियों एवं दोषों को मिटाने की चेष्टा की। वे मूर्ति पूजा को वेद विरूद्व एवं धर्म विरूद्व बतलाये। नारी की गरिमा का समर्थन करते हुए उसे पुरूष के समान बताया और समान अधिकार की वकालत की। स्त्री शिक्षा एवं स्त्री के वेद अध्ययन उनके स्वतंत्रता के पक्षपाती थे। वे बाल विवाह के कटट्र विरोधी थे और अपने विवेक के अनुसार साथी चुनने के समर्थक थे। उन्होनें दहेज–प्रथा, बहु–विवाह, विधवा विवाह, सती प्रथा आदि सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया। स्वामी दयानन्द ने कहा था कि, " 16 वर्ष से कम आयु की कन्या और 25 वर्ष से कम आयु का पुरूष संतान उत्पन्न करने के योग्य नहीं होते। अतः किसी भी स्थिति में इससे कम आयु में विवाह नहीं होना चाहिए।"
5. **भारतीय जीवन का पूर्ण उद्वार** – स्वामी दयानन्द वेदों के आधार पर भारतीय का उद्वार चाहते थे किन्तु यूरोप संस्कृति के कुछ पक्षों के सर्मथक भी थे। उनका कहना था कि यूरोपिय लोगों की उन्नति निम्न कारणों से हुई है। उनमें बाल–विवाह की प्रथा नहीं, वे लड़के–लड़कियों को अच्छी शिक्षा देते थे, उनमें स्त्रियॉ स्वंय पति चुनती थी, वे स्वदेशी वस्तु प्रयोग में लाते थे, वे अपने देशवासी के कार्यो में मदद करते थे।

स्वामी दयानन्द का राजनीतिक चिन्तन – स्वामी दयानन्द सरस्वती ने राजनीतिक चिंतक के रूप में कोई विचार का प्रतिपादन नहीं किया। वे एक सामाजिक दार्शनिक और निर्माता थे परन्तु देश के राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति काफी जागरूक थे। उन्होनें वेदों में राजनीतिक सूत्रों और मनुस्मृति के राजनीतिक दृष्टिकोण को अपने राजनीतिक चिंतन का आधार बनाया। स्वामी दयानन्द का राजनीतिक चिन्तन कौटिल्य के अर्थशास्त्र और मनुस्मृति से प्रभावित है। उनके राजनीतिक चिन्तन की प्रमुख बातें निम्न प्रकार है –

1. **व्यक्ति की गरिमा और स्वतंत्रता का समर्थन** – स्वामी दयानन्द ने अपने राजनीतिक विचारों में राज्य की महत्ता को स्वीकार किया है। उन्होंने व्यक्ति की गरिमा एवं स्वतंत्रता का समर्थन किया है। उन्होंने व्यक्ति की गरिमा को स्थापित करने के लिए जाति, वर्ण, लिंग आदि की संकीर्ण भावना से मुक्त ऐसे समाज और राज्य की कल्पना की है जिसमें हर व्यक्ति को समानता के आधार पर अपने व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास हेतु समान अवसर और अधिकार प्राप्त हो सके। वे स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार के भी समर्थक थे। उनका मानना था कि एक विवेकपूर्ण सामाजिक व्यक्ति सामाजिक हित का सच्चा हितैषी होता है। उनका कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने ही उन्नति से संतुष्ट नहीं होना चाहिए अपितु सभी की उन्नति में ही उन्नति समझनी और माननी चाहिए।
2. **मर्यादित शासन व्यवस्था का आग्रह** – स्वामी दयानन्द सरस्वती मार्यादित शासन व्यवस्था के समर्थक तथा अमार्यादित शासन व्यवस्था के स्पष्ट विरोधी थे। दयानन्द ने वंशानुगत राजतंत्र का निषेध करते हुए कहा है कि उत्तम नैतिक गुणों से युक्त, प्रजा पालन के प्रति प्रतिबद्व तथा राजकीय कार्यो के निर्वाह में सक्षम व्यक्ति प्रजा की सहमति से ही शासक के रूप में नियुक्त किया जाना चाहिए।
3. **राज्य के लोक कल्याणकारी स्वरूप का प्रतिपादन** – स्वामी दयानन्द ने कहा कि राज्य व्यापक कार्यक्षेत्र वाली संस्था है, जिसका उद्वेश्य व्यक्तियों का भौतिक, नैतिक और आध्यामिक कल्याण करना है। उन्होंने कहा कि शासक प्रजा के कल्याण तथा उसकी सुरक्षा के प्रति समर्पित रहकर ही प्रजा की स्वाभाविक आज्ञाकारिता प्राप्त कर सकता है तथा शासन को प्रभावी बना सकता है।

4. **सक्षम प्रशासनिक व्यवस्था का आग्रह** – दयानन्द सरस्वती का मानना था कि शासन में प्रत्येक स्तर पर समुचित संख्या में सुयोग्य एवं सक्षम पदाधिकारियों की नियुक्ति होनी चाहिए। उन्होंने अधिकारियों के कार्यो, शक्तियों को भी भली–भॉति परिभाषित किया है। उन्होंने शासकीय अधिकारियों के योग्यताओं में ज्ञान, पवित्रता, तत्परता, निष्ठा, साहस, पुरूषार्थ और प्रजा के हितों के प्रति संवेदनशीलता को विशेष महत्व दिया है। उन्होनें राजकीय अधिकारियों को कामजन्य और क्रोधजन्य व्यसनों से बचने का परामर्श दिया है।
5. **न्याय और दण्ड व्यवस्था व कर–व्यवस्था** – स्वामी दयानन्द के अनुसार न्याय राज्य का एक महत्वपूर्ण दायित्व है। मनुस्मृति के विचार को अपनाते हुए दयानन्द ने अपेक्षा की है कि न्यायिक शक्ति का उपयोग धर्म के अनुकुल व पक्षपात रहित होकर किया जाना चाहिए। स्वामी दयानन्द ने न्याय की शक्ति को अकेले शासक में निहित नहीं की है। उनके अनुसार न्याय की शक्ति का प्रयोग धर्म सभा द्वारा किया जाना चाहिए क्योंकि धर्म सभा सर्वोच्च नागरिक निकाय है। न्यायिक व्यवस्था में वह मनुस्मृति विचारों को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार न्यायिक शक्ति का दुरूपयोग करने वाले तथा पक्षपात करने वाले न्यायधीशों को दण्डित किया जाना चाहिए। कर व्यवस्था के प्रति अपना विचार दिया कि प्रजा पर अधिक मात्रा में तथा अनावश्यक कर नहीं लगाना चाहिए।

स्वामी दयानन्द का धार्मिक विचार

1. **मूर्ति–पूजा का विरोध** – स्वामी दयानन्द मूर्ति–पूजा के विरोधी थे। मूर्ति पूजा का विरोध उनके धार्मिक चिन्तन एवं विश्वास का एक अंग बन गया। उनका मानना था कि मूर्ति पूजा न तो वेद सम्मत है और न ही कोई धार्मिक कार्य। उनका यह भी मानना था कि मूर्ति में ईश्वर के अस्तिव को मानना एक अंधविश्वास है।
2. **एकेश्वरवाद में विश्वास** – स्वामी दयानन्द ईश्वर के प्रति अनन्त श्रद्वा और भक्ति रखते थे। उनका कहना था कि ईश्वर एक हैं और सभी को इस तथ्य को ग्रहण करने की प्रेरणा देते थे। धार्मिक मत–मतान्तरों के आधार पर हिन्दु समाज में प्रचलित विवादों का उन्होंने सदैव विरोध किया। उन्हें ईश्वर की सर्वव्यापकता एवं अनन्य सत्ता में विश्वास

था। उन्होंने हमेशा इस बात पर बल दिया कि ईश्वर और धर्म तो कर्म की प्रेरणा देते हैं और पुरूषार्थ से विमुख व्यक्ति कभी ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता।

3. **शुद्वि आन्दोलन** – स्वामी दयानन्द ने इस्लाम और ईसाई मत का खण्डन किया तथा शुद्वि आन्दोलन चलाया गया। जिसके कारण उन वर्गो के साथ विवाद की स्थिति बन गई। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इस बात की घोषणा की कि जिन हिन्दुओं ने हिन्दु धर्म को त्याग कर अन्य धर्मो को ग्रहण कर लिया है यदि वे पुनः हिन्दू धर्म को स्वीकार करना चाहे तो ऐसा कर सकते हैं और अहिन्दू यदि चाहें तो हिन्दु धर्म में प्रवेश प्राप्त कर सकते हैं।
4. **वेदों के अध्ययन का अधिकार –** स्वामी दयानन्द सरस्वती का मानना था कि स्त्री और शुद्र को जितना वेद के पठन–पाठन का अधिकार है उतना ही अधिकार पुरोहित वर्ग के व्यक्ति को है क्योंकि स्वामी जी धार्मिक क्षेत्र में समानता के सिद्वान्त को अपनाने के समर्थक थे। गौ रक्षा के पक्षधर थे। उन्होंने पुरोहितवाद, पाखण्डवाद के विरूद्व जीवन–पर्यन्त सघर्ष किया। उनका उद्वेश्य धर्म को सभी प्रकार के आडम्बरों से मुक्त कर उसे मानवता की सेवा में संलग्न करना था।